मनुष्य बनो

अगस्त
?०

वा० मू
२०.०

प्रेरणा, शुभ संकल्प,

क्षमा,   प्रेम,

निष्काम कर्म, ब्रह्मचर्य पालन,

रक्षक

दयाल फकीर चन्दजी महाराज

मानवता मन्दिर होशियारपुर (पंजाब)

'मनुष्य बनो' के नियम

१—शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिकता के नियमों का वास्तविक दृष्टिकोण से प्रचार करना और प्रेम, सभ्यता, आदर, शिष्टाचार, सदाचार, सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है मनुष्य बनना और बनाना।

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की वाणी को सरल, सुबोध और साधारण भाषा में प्रचार करना।

३—सामाजिक उन्नति कारक तथा देशहित कारक लेखों को भी स्थान दिया जायेगा।

४—किसी धर्म पन्थ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छापे जायेंगे।

५—यह पत्र प्रत्येक मास की १५ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा।

६—लेखों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को होगा। लेख सम्पादक के नाम भेजे जांय।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ-साफ अवश्य लिखना चाहिए। उत्तर के लिये जवाबीकार्ड आना चाहिए वी० पी०पी० से पत्रिका नहीं भेजी जायेगी। इसका वार्षिक मूल्य २०.०० है।

८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुंचे तो पहले अपने यहां डाकखाने से पूछताछ करके वहां से जो उत्तर न मिले व अगला अंक निकलने के एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुंचने पर ही दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जा सकेगी।

९—प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि मैनेजर के नाम से भेजनी चाहिए। मनीआर्डर कूपन पर अपना पता साफ-साफ लिखना चाहिए। और पते की तबदीली भी।

—प्रकाशक

R. S.

ओ३म पूर्णमद पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमदुच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ॥

मनुष्य बनो

वर्ष ३९ | अगस्त १९९० | अङ्क ११

शब्द

जो पास गुरु के रहते हैं, गुरु का रंग उन पर चढ़ता है।
जो गुरु की सेवा करते हैं, गुरु प्रेम उन्हीं का बढ़ता है।१।
जल के नजदीक जो बसते हैं, उनको ही ठंडक मिलती है।
अग्नि का संग जो करते हैं, उनका शरीर ही सड़ता है।२।
फूलों से खुशबू मिलती है, गन्दगी से बदबू आती है।
गुरु से रोशनाई मिलती है, और काल अंधेरा डरता है।३।
गुरु के संस्कारों का मंडल, मंडलाता रहता है।
जो खाली होकर जाते हैं, उनके हृदय को भरता है।४।
जो चरण गुरु के छूता है, बिजली की धारा बहती है।
वह भस्म करे सब पापों को, वह भवसागर से तरता है।५।
स्त्री को देखे काम जगे, सत गुरु को देखे नाम जगे।
जो नाम से लौ लगाता है, वह चौरासी नहीं पड़ता है।६।
गुरु से मिलकर सत गुरु मिलता है, सत्गुरु से मुक्ति मिलती है।
'गाफिल' जो गुरु दीवाना है, वह जीता नहीं मरता है।७।

R. S.

आदर्श मानव विवाह

श्री हुजूर; "मानव दयाल" जी महाराज के आध्यात्मिक सचिव आचार्य, "शब्दानन्द" जी के सुपुत्र चि० न्यायेन्द्र प्रकाश नारायण श्रीवास्तव निवास मुबारकपुर, जिला गाजीपुर (उ० प्र०) का शुभ-विवाह आचार्य, "मोहन-दयाल" (के० एम० श्रीवास्तव) निवासी, "फकीर सत्संग केन्द्र" मिश्रित तीर्थ जिला सीतापुर (उ०प्र०) की सुपुत्री कु० कुन्जलता (चन्द्रकान्ता) के साथ दिनांक ७-७-९० दिन शनिवार को "मानवता मन्दिर" होशियारपुर में श्री 'परम सन्त, परम मानव (डा० आई० सी० शर्मा) "मानव दयाल" जी के कर कमलों द्वारा वैदिक रीति से 'विवाह मण्डप' में सम्पन्न हुआ। जिसमें हजारों सत्संगी, बहन, भाइयों ने भाग लिया और वर-वधू को आशीर्वाद दिया।

सम्पादक

धन्यवाद !

श्री मोहनदयालजी (के० एम० श्रीवास्तव) ने अपने सुपुत्र के विवाहोपलक्ष पर ५१/- रु० मनुष्य बनो की सहायतार्थ भेजे हैं मालिक से कामना है कि वर-वधू को दीर्घायु करे व उनका जीवन मंगलमय हो।

—सम्पादक

सत्संग

ले० परमदयाल जी महाराज

ऐ देहली की सतसंग सभा के सतसंगियों, साधुओं, परमहंस और संतो राधास्वामी । आपने सभा को रजिस्टर कराने के लिये नाम पूछा । मैं इस सभा का नाम "दयाल मानबता प्रचारक सभा" रखता हूं । क्यों ? इसलिये कि :—

मेरे जीवन की निज खोज ने यही सिद्ध किया है । और दाता दयाल हुजूर महर्षि जी महाराज के पवित्र पुनीत स्बरूप ने मुझे सुनाम स्टेशन पर जन साधारण के सम्मुख वर्णन किया था कि फकीर समय बदल जायेगा धर्म और पन्थ समाप्त हो जायेगा । चोला छोड़ने से पूर्व शिक्षा में परिवर्तन कर जाना, जिससे कि भविष्य में आने वाली मानव जाति पथ भ्रष्ट न हो ।

मित्रो ! मुझे किसी बात का दावा नहीं है । मैंने अपना समस्त जीवन इस सन्तमत में और योग की क्रियाओं और सोपानों को पार करने में बहुत ही सत्यता, निर्पक्षता और निष्कामता से व्यतीत किया है । मानव सब त्रुटियाँ करते हैं मैंने भी की हैं, किन्तु मेरी नीयत सदैव वास्तविकता, सत्य प्रीयता पर रही है । चूँकि मुझे दातादयाल जी ने जगत कल्याण का कार्य सौंपा था, जैसा कि उनके इस शब्द से व्यक्त है ।

"जग के प्राणी तेरा रूप हैं मेंट दे उनका तपना" ।
"तेरा रूप है अदभुत, अचरज, तेरी उत्तम देही ।
जग कल्याण जगत में आया, परम दयाल सनेही" ।।

वास्तविकता और सत्य प्रीयता सुभाव रखने के कारण, सोचता हूँ कि मैं कैसे जगत के प्राणियों का तपना मेंट सकता हूँ ?

इसका उत्तर एक तो यह हैं कि जब मानब रात को सो जाता है तो उसके लिए संसार नहीं रहता है । सम्भव है दातादयाल जी का

यह भाव हो कि फकीर तू अपना तपना मिटा दें। तेरे लिये समस्त संसार का तपना मिट गया। यदि यही भाव है तो बस खेल समाप्त है। मेरा तपना मिट गया। वह कैसे ? सुनो !

मेरे मन के भीतर किसी अनिभिज्ञ वस्तु की खोज थी, उसके प्राप्त करने के लिये भक्ति, कर्म योग आदि समस्त जीवन करता रहा। पहले राम, कृष्ण और ईश्वर से प्रेम था। फिर मौज दाता दयाल के चरण कमलों में ले गई वहाँ उनको प्रीतम बनाया। प्रेम किया, नाचा, साधन किया। उनके अन्तर में दर्शन होते तो प्रसन्नता की कोई सीमा न रहती। मस्ती लेता, मुग्ध होता, आनन्द लेता, ऋद्धि, सिद्ध प्राप्त हुई। आदर, मान, प्रतिष्ठा मिली। विवेक और ज्ञान प्राप्त हो गया। अध्यात्मिक सोपनों की व्याख्या की सीमा कर दी। साथ ही ग्रस्थ जीवन को भी भली प्रकार निभाया।

किन्तु सतसंगियों के अनुभवों ने मेरी आँखें खोल दीं। क्योंकि "जिन्हें मेरा स्वरूप मरते समय ले गया अथवा जिनके अन्तर मेरा रूप प्रकाश में प्रकट हुआ, उनकी सहायता हुई। जिनकी मेरे प्रसाद से बीमारी चली गई। जिनके सन्तान हुई जो फाँसी लगने से छूटे आदि २। चूँकि मैंने अपने आपको इन समस्त बातों से अनिभिज्ञ समझा है इसलिये मुझे यह निश्चय हो गया कि प्रत्येक प्राणी को जो कुछ भी मिलता है, यह उसका अपना ही भाव, विचार, श्रद्धा और विश्वास है। जोव चूँकि रहस्य ज्ञाता नहीं है वह भ्रम में फँसा हुआ है, और इस अज्ञान और भ्रम के कारण मानव ने अनेक प्रकार के धर्म, पन्थ और सम्प्रदाय बनाये हुए हैं, जिनका परिणाम सामाजिक और देशीय रूप से मानव जाति के लिये वर्तमान युग में हानिकारक और अप्रीय है।

इसके अतिरिक्त चूँकि सत्त पुरुष राधास्वामी दयास ने अपनी पोथी "सार बचन" के माया सम्वाद में स्पष्ट कहा है कि जितने भी यह मतमतान्तर हैं यह सब काला और माया मत के अन्तरगत

हैं। काल व माया एक शक्ति है जो प्रत्येक प्राणी के मन के अन्तर हैं। बल्कि मन स्वयं उसी का अंश है। सन्त कबीर ने भी यही बात कही है। इसलिये मैं विवश हो गया कि इन पूरण पुरुषों की वाणी के साथ सहमत हूँ।

यदि मानव इस रहस्य को समझ जाय तो वह इन समस्त धर्म और पन्थों के पक्षपात से रहित होकर मानवता के सिद्धान्तों पर चलकर अपना सामाजिक और देशीय जीवन प्रसन्ता पूर्वक शान्ति से व्यतीत कर सकता है।

अध्यात्म और कुछ नहीं है केवल मानव का अपने मन के विचारों में न फंसना और अपने आप को प्रकाश और शब्द स्वरूप बना लेना अथवा प्रकाश और शब्द का साधन करना है। मानवता केवल यही है कि अपने मन को नियंत्रण में रखकर "शुभ संकल्पम अस्तु" के के नियमानुसार अपने भाव और विचारों में खेलना।

और इससे आगे एक श्रेणी और सोपान जो परम संतों की है वह यह है कि अपने अस्तित्व को मिटा कर ऐसी दशा में रहना जहाँ मानव को यह संसार और अपना आन्तरिक जगत नहीं भासता है। वह स्वयं जात अथवा अपना निज रूप ही जाता है। इन अनुभवों ने मुझे इस अन्तिम सोपान पर पहुँचा दिया। किन्तु मोजाधीन अभी यह शरीर विद्यमान है। इसलिये जगत कल्याण के विचार से इस अनुभव के आधार पर जिससे मेरा अपना कल्याण हुआ, मैं अपने विचारों को व्यक्त करता हूँ। और सच्चा हित और मत देता रहता हूँ। कोई सुने अथवा न सुने।

मैंने शिक्षा को नये रूप में सुगम शब्दों में पर्दादारी को न रखने हुए व्यक्त किया है और सरल कर दिया है।

मेरे लिए अब न तो आवागमन का भ्रम रहा न किसी की पूजा पाठ और भक्ति। प्रेमी और प्रीतम का विचार भी नहीं रहा। केवल दाता दयाल जी की कृतज्ञता शेष है :—

एक ऐसी हालत का अनुभव हुआ, जहाँ में न तू का निशान रहा ।
मैं कैसे कहूँ मैं क्या रे बना, न वही बना न यही रहा ।।
खामोशी मन्जिल यह दुनियाँ मेरी,
मगर मौजाधीन अभी चुप न रहा ।।

इस कारण से मैंने आपकी सभा का नाम "दयाल मानवता प्रचारक सभा" रक्खा है। यह ठीक है कि अभी जन साधारण इस गूढ़ रहस्य को समझाने के योग्य नहीं हैं। यदि हैं भीं तो वर्तमान प्रचारक और उपदेशक रहस्य को नहीं खोलते।

मेरा कर्तव्य है, इसलिये जगत कल्याण के विचार से इस रहस्य को खोल रहा हूँ और सत्य मार्ग बतला रहा हूँ।

गुरु ने अब दीन्हा भेद अगम का। सुरत चली तज देश भरम का ।।
बल पाया अब विरह भरम का। भटकन छूठा दैरों हरम का ।।
बर्षन लगा में करम का। संशय भागा जनम मरन का ।।
तोड़ दिया सब जाल निगम का। सुख पाया अब हम दम-दम का ।।
फल पाया आज हम सम दम का। भँवर हुआ मन सेत पदम का ।।
फूँक दिया घर लाज शरम का। काटा फंदा नेम धरम का ।।
ज्ञान ध्यान बाचक हम छोड़ा। भक्ति भाव का पहना जोड़ा ।।
भक्ति भाव की महिमा भारी। जानेंगे कोई संत विचारी ।।
सत्त नाम सत्त पुरुष अपारा, चौथे माँहि करें दरबारा ।।
सुरत शब्द मारग कोई पावे। सो हंसा चढ़ लोक सिधावे ।।
सौ मारग अब राधास्वामी गाई। कोई कोई प्रेम भक्ति से पाई ।।

यदि मैं वास्तव में फकीर हूँ और जगत कल्याण हेतु आया हूं तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि भारत वासी दो अथवा तीन वर्ष के भीतर ही भीतर एक नवीन समृद्धशाली और प्रसन्नमय युगले आयेंगे और संतों का वास्तविक ध्येय पूर्ण होगा। संतमत की शिक्षा का वास्तविक ध्येय :—

निर्भ्रान्ति, निर्भयता, प्रसन्नता, अचिन्तता और पारस्परिक प्रेम हैं। तुम सब मेरे ही रूप हो। काम करो, काम करो, काम करो। आप तरो औरों को तारो।

सम्भव है आप सज्जन मेरे स्पष्ट वर्णन से सहमत न हों। क्यों कि स्पष्ट वर्णन से क्षेत्र नहीं बढ़ता है। किन्तु मित्रो! संतमत की शिक्षा के अनुसार और आत्मविद्या के विचार से किसी पूर्ण पुरुष का अस्तित्व अथवा सत्त पुरुष का अस्त्वि बहुत ही विशाल और महान उत्तम माना जाता है।

मेरा अपना विचार है कि प्रत्येक धर्म, पन्थ बोलों ने रोचक और भयानक रूप में अपना क्षेत्र अथवा सभा बढ़ाने के लिये पर्दादारी काम लिया है। क्षेत्र बढ़ गया, रुपया एकत्रित हो गया, सभा बन किन्तु उसका परिणाम क्या हुआ? मस्जिद और मन्दिरों के पर रक्त की नदियाँ बहीं मुकद्दमे चले। भारत वासी बँट गये। कोई सिक्ख, कोई हिन्दू, कोई मुसलिम, कोई ईसाई, कोई जैनी, कोई बौद्ध बना। आज मानव जाति की क्या दशा है? मालिक ने अब हम पर दया की, हमको झंझोड़ा गया, पारस्परिक प्रेम उत्पन्न हुआ किन्तु यह प्रेमवास्तविक प्रेम नहीं है। जब तक वास्तविकता और सत्यता का ज्ञात मानव जाति को न होगा मह असम्भव है कि भारतवर्ष वास्तविक और सच्चे अर्थ में एकता और प्रेम के मार्ग पर चले। इसीलिये :—

गुरु ऋण के उतारन के लिए, मैंने सचाई का डंका बजाया है।
कोई कोई प्यारा भाई है, जिसने मुझे दिया सहारा।।
साँचे का कोई गाहक नहीं, झूँठ हो जग का प्यारा है।
हमने तो अपना काम जो करना था कर लिया
आगे सत्गुरु आप ही रखवारा है।

मुझे निश्चय है कि सत पुरुषों की रेडियेशन कार्य करती है। किन्तु सत्तपुरुष वे नहीं जो हेर-फेर कर बातें करते हैं और जगत को किसी धर्म, पन्थ और सम्प्रदाय में फंसा कर पक्ष पाती बनाते हैं।

अंखियाँ बिन दरशन तरस रहीं ॥टेक॥

सूखे होंट आँख पथराईं, हूल कलेजे पैठा ।
थर थर काँपे निबल अंग मेरा, मन बैरी बन बैठा ॥ तरस

दिन को चैन रात नहीं निद्रा, व्याकुल चित घबराऊं ।
जगत अँधेरा सूझे नहीं कुछ, कहाँ आऊँ कहाँ जाऊँ ॥ तरस

दाना पानी न मोहि सुझावे, किसी की बात न भावे ।
रोग सोग की समझ कठिन, ता बैद्य नहीं पावे ॥ तरस

बिरह की आग हिये में भड़की, सुलग रही दिन राती ।
धुवाँ न उठे न ज्वाला फूटे, किसे दिखावन जाती ॥ तरस

मनकी उपजी मन में रहानी, मन कुरेद की खानी ।
मन ही समझे मन की कहानी, और कोई क्या जानी ॥ तरस

घट में उठी चाह प्रीतम की, घट में दर्शन माँगूं ।
घट की आँख से रूप निहारूँ, घट चरनन से लागूँ ॥ तरस

घट में आओ दरस दिखाओ, घट का मन्दिर सूना ।
घट को बसाओ जोति जलाओ, हो प्रकाश दिन दूना ॥ तरस

प्रीतम शब्द सुरत चित का अंग, प्रेम बंक की नाली ।
सुरत शब्द का मेल मिले जब, सुख से रहूँ निहाली ॥ तरस

देकर दरस पीर मेरी मेटो, हरो त्रिगुन दुख साला ।
दया करो मैं दयापात्र हूँ, राधास्वामी दयाला ॥ तरस

—:o:—

मासिक सन्देश

परमदयाल सद्गुरू हजूर मानव दयाल

डा० ईश्वरचन्द्र शर्मा जी महाराज

मेरी अपनी ही आत्मा के अंश

मेरे परम प्रिय सत्संगियों !

राधास्वामी, परम दयाल जी सहाई ।

पिछले मासिक सन्देश में, मैंने आपको सत्संग के दोरे के बारे में बताया था कि २६ जनवरी को हम विदेशी दौरा समाप्त करके देहली पहुँच गये थे । देहली में केवल २६ जनवरी की रात्रि को विश्राम करके २७ प्रातःकाल शाने पंजाब से देहली से रवाना होकर जलन्धर होते हुए, उसी दिन हम २ बजे दुपहर तक मानवता मंदिर पहुँच गये । क्योंकि २८ जनवरी को मासिक सत्संग होना था, इसलिए मेरे मानवता मंदिर पहुँचने से पहले ही काफी सत्संगी दूर-दूर से मानवता मंदिर में पहुँच चुके थे । सायं काल तक उनकी संख्या बहुत बढ़ गयी थी । हर मासिक सत्संग से पहले शनिवार को मैं सायंकाल साढ़े सात बजे की आरती में शामिल हुआ करता हूँ और आरती के तुरन्त बाद सत्संग भी दिया करता हूँ । प्रायः यह सत्संग आधे घन्टे या ४५ मिनट का होता है । इसमें सत्संगी बहुत रुचि लेते हैं क्योंकि हर बार सत्संग में आध्यात्मिक जीवन में उन्नति करने के लिये कोई न कोई नयी बात अवश्य सामने आ जाती है । अक्सर इस आरती के सत्संग में मुझे स्वयं एक विशेष अनुभव होता हैं और मस्ती में आकर के जो वाणी की धारा बहती है, उसमें सत्संगी और मैं दौनो मगन हो जाते हैं । यही हालत २७ जनवरी के सत्संग की हुई । यह सत्संग इसलिये विशेष था कि वह डेढ़ या दो घन्टे तक

चला । कोई भी व्यक्ति अपनी जगह से हिला तक नहीं । सत्संगी खाना भी भूल गये । सत्संग समाप्त होने के बाद ऐसे लगा कि हम सब एक गहरी निद्रा से अचानक जाग उठे ।

ऐसा होना जरूरी भी है । ऐसे अनुभवों से ही जीव सांसारिक निद्रा से जागता है और ऐसा अनुभव करने लगता है कि शरीर मन और आत्मा के अनुभवों से परे जो परमानन्द का अनुभव है अथवा जो राधास्वामी हालत है, वही हमारा निजस्वरूप है निजधाम है और असली नाम की प्राप्ति है । राधास्वामी मत के इस अनुभव को बहुत कम लोग समझते हैं । आम सत्संगी तो क्या बल्कि बड़े-बड़े अभ्यासी, साधक, प्रचारक और गुरु का काम करने वाले भी इस सच्चाई को नहीं समझते या उन्होंने उसका अनुभव नहीं किया होता और केवल सुमिरन ध्यान भजन को ही साधना का सबसे ऊँचा लक्ष्य मान लेते हैं । इसमें कोई शक नहीं कि सन्तमत या राधास्वामी मत ने आम लोगों को चिताया है कि कलियुग में नाम आधार एवं शब्द आधार है । सुमिरन, ध्यान भजन की दीक्षा लेना भी नामदान कहा जाता है लेकिन इस पर अमल करना साधन है साध्य नहीं जरिया है मंजिल नहीं । इस साधन के जरिया या गुरु के सत्संग में गुरु की वाणी के बहाव में बह जाने से शरीर मन और आत्मा से ऊपर उठकर उस उन्मुनी हालत का अनुभव करना हमारा साध्य, लक्ष्य या मंजिल है, जिस पर पहुँच कर सभी भेद भाव समाप्त हो जाते हैं इसलिये कहा गया है :—

नाम रहे चौथे पद माहीं
वो ढूंढे त्रिलोकी माहीं

यह नाम साधन नहीं है, यह तो महत्व होने और मस्त होने की वह अवस्था है, जिसमें सत्संगी सत्गुरु के प्रेम में इतना लीन हो जाता है कि वह सुधबुध खो बैठता है । यह सुधबुध शरीर, मन और

आत्मा की सुधबुध है। शरीर के दायरे में मनुष्य स्थूल शारीरिक सुख-दुःख का अनुभव करता है। जब उसकी सुरत या उसकी सुरत का ध्यान अजपा जाप करते हुए, मन में ठहर जाती है, तो वह शारीरिक सुख दुःख से ऊपर उठ जाती हैं। मन एकाग्र होने की वजह से, वह शरीर के रोग से भी मुक्त हो जाता हैं। किन्तु यह अवस्था हालांकि सिद्धीं शक्ति की अवस्था होती है और मन को अच्छी लगती है, फिर भी यह मंजिल नहीं है। इसी मन की एकाग्रता के कारण चमत्कारों का अनुभव होता है, गुरु का रूप प्रकट होता है। यह गुरू के सूक्ष्म शरीर का रूप होता है। लेकिन साधक को केवल यहाँ पर ही नहीं ठहर जाना चाहिये। सच्चा गुरू जो खुद चौथे पद में रहने वाला है, सत्संगी को इस भुलावे में नहीं डालेगा कि उसका यह सूक्ष्म रूप असली मंजिल है। इसलिये वह उसे इस मानसिक दर्जे से ऊपर उठने के लिये कहेगा जब साधक की सूरत प्रकाश का ध्यान लगाते हुये ऊपर उठेगी, तो उसे मन के दर्जो से ऊपर जाकर आत्मा के दर्जे पर केवल आनन्द का अनुभव होगा। आनन्द की अवस्था में चेतना भी नहीं होती, केवल आनन्द होता।

चौथा पद या चौथी हालत इससे भी ऊपर है, उसमें न प्रकाश रहता है न शब्द रहता है, केबल हस्ती या जात रहती है, जिसे विशुद्ध आत्मा कहा जाता है। इसका अनुभव काफी समय के बाद थोड़े समय के लिये हर एक साधक को हो सकता है। यही अनुभव सच्चे सदगुरू के सत्संग में भी हो जाता है। ऐसा सत्संग वास्तव में अगम की धारा का बहाव होता है। इसी को चौथा पद कहा गया है। इसके बारे में मैं फिर आपसे बात-चीत करूंगा। लेकिन यहाँ पर आपको यह याद दिलाना चाहता हूँ कि राधास्वामी या सन्तमत इसी शुद्ध अबस्था और शुद्ध अनुभव की तरफ इसारा करता है। जब साधक को कहा जाता है।

"न खालिक मखलूक न खल्कत,
कर्ता कारण काज न दिक्कत
राम रहीम करीम न केशव
कुछ नहीं कुछ नहीं कुछ नही था सो"

यह स्वामी जी महाराज की बानी है और इसने राधास्वामी मत का सारभेद है। यह 'कुछ नहीं' की हालत इशारा करती है कि मालिक की वह जाते पाक, जो हमारा निजघर है और हमारा मस्किन है, वह अपने आप में शुद्ध है, पवित्र है। उसकी कोई सीमायें नहीं हैं, उसका कोई रंग रूप नहीं है। वह हर प्रकार के माप तोल से परे है, लेकिन है जरूर। "कुछ नहीं" का मतलब खालीपना नहीं बल्कि पूर्णता है। सदगुरु अपने शिष्य में या सत्संगी में एक क्षण के लिए भी तभी यह हालत पैदा कर सकता है, जब वह खुद इस हालत में पहुँच जाता है। इसी सचाई को बयान करते हुए दातादयालजी ने कहा है—

राधास्वामी सतगुरु आये, भेद दिया पूरा २।
जो कोई भेद भाव को मेंट सतगुरु का सेवक सूरा ।।

मैं आपको बता रहा था कि २७ जनवरी के सत्संग में कुछ ऐसी ही हालत तारी हो गयी थी, जिसे हम उन्मुनी हालत कह सकते हैं। दूसरे दिन मासिक सत्संग हमेशा की भाँति बहुत प्रभाव शाली और सफल रहा। बटाला के सत्संगियों ने हर मास की भाँति संगत की प्रातःकाल के नाश्ते से सेवा की। ऐसी सेवा करने से मन शुद्ध होता है। मैंने यह देखा है कि जो बटाला के सत्संगी हित चित से दूसरे सत्संगियों को चाय नाश्ता देते हैं, वे सत्संग के दौरान में एक खास मस्ती की हालत में पाये जाते हैं। उनकी श्रद्धा और भक्ति पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है। मैं यह अपने अनुभव के आधार पर कह रहा हूँ। यदि मैं गलत हूँ, तो मेरे प्यारे बटाला के सत्संगी इस सन्देश को

पढ़कर मुझे अवश्य लिखें ।

उसी दिन दुपहर के ३ बजे की गाड़ी शाने पंजाब से जलन्धर से रवाना होकर रात्रि के १० बजे दिल्ली पहुँच गया। २६ जनवरी दुपहर के २ बजे हम A.P. एक्सप्रैस से रवाना होकर दूसरे दिन दुपहर को काजीपेट पहुँच गये जहाँ पर हनम कुण्डा के सत्संगी और हैदराबाद के श्री भगवान व्यास हमारे स्वागत के लिये मौजूद थे। क्योंकि हनमकुण्डा में राधास्वामी जनरल सत्संग केन्द्र में हरसाल की भाँति ३१ जनवरी और पहली फरवरी को बसन्तसन्त सम्मेलन आयोजित था, इसलिये हम काजीपेट से हनमकुण्ड पहुँच गये। इस बार हनमकुण्डा के कार्यकर्ताओं ने ठाकुर कर्णसिंह के नेतृत्व में बहुत ही शानदान प्रबन्ध किया था। सत्संगी भी बहुत भारी संख्या में दूर-दूर से आ गये थे। इस दौरे की विस्तारपूर्वक सूचना आपको आचार्य शब्दानन्दजी ने पहले ही देदी है। इसलिये मैं आपको उस भव्य स्वागत और सजावट के बारे में, जिसका मुझे वहाँ अनुभव हुआ, अधिक न बताकर आवश्यक सूचना दूंगा। हनमकुन्डा में ३६ वर्ष से वसन्तसन्त सम्मेलन आयोजित किया जा रहा है। परमदयालजी महाराज को ३६ वर्ष पूर्व यहाँ के मुख्य कार्यकर्ता गिरधरसिंह जी ने और शंकरसिंह जी ने इस सत्संग के सिलसिले को चलाने के लिये आमन्त्रित किया था और कहा था, "हजूर महाराज ! आप हर वर्ष वसन्त के अवसर पर यहाँ आया करें और हमें अपने सत्संग की अमृत वर्षा से लाभान्वित किया करें। परमदयालजी महाराज ने उन्हें वचन दिया कि वह उनकी वह इच्छा पूरी करेंगे। वह हरसाल १९८१ तक अपने इस वचन को निभाते रहे। हजूर नन्दू भाईजी महाराज ! इस अवसर पर परमदयालजी के साथ रहा करते थे, क्योंकि वह परमदयालजी को सदगुरु वक्त मानते थे और उनकी उपस्थिति में, आन्ध्र प्रदेश में सत्संग नहीं दिया करते थे। इन दोनों गुरु भाइयों का

आपस में अगाध प्रेम था। मैं स्वयं होशियारपुर में दो-तीन बार परमदयालजी की उपस्थिति में हजूर नन्दू भाईजी को मिला था और उनका मेरे प्रति भी प्रेम था। इसलिये जब से मैंने परमदयालजी का कार्यभार सम्भाला है, हर वर्ष इस अवसर पर हनमकुण्डा आया करता हूँ और आन्ध्र प्रदेश का दौरा किया करता हूँ। हनमकुण्डा मेरे लिये तीर्थ स्थान है, क्योंकि यहाँ पर ही परमदयालजी द्वारा दातादयाल जी महाराज की मूर्ति स्थापित है और यहीं पर ही दाता दयाल जी महाराज ने कई वर्षों तक राधास्वामी मत के साहित्य की रचना की है। दो-तीन वर्ष पहले मुझे हनमकुण्डा के केन्द्र के अधिकारियों ने और बहुत से प्रेमी सत्संगियों ने कहा था, "महाराज ! आप हमेशा इस अवसर पर हनमकुण्डा अवश्य आया करें। इसलिये मैं भी इस सम्बन्ध में वचन बद्ध हूँ और हनमकुण्डा, हैदराबाद तथा आन्ध्र प्रदेश के सभी सत्संगियों की श्रद्धा और प्रेम का आदर करता हूँ।

दोनों दिन सत्संग बहुत ही उत्तम रहे और हमेशा की भाँति सत्संगों के दौरान में मेरे और सत्संगियों के बीच तारी बन्ध गयी। इस बार मेरे साथ आचार्य शब्दानन्द के अलावा, आचार्य केशवप्रसाद वर्मा आचार्य कृष्ण मोहन तिवारी और डा० चन्द्रनगेश नेगी भी थे। आचार्य शब्दानन्द आचार्य केशवप्रसाद वर्मा और आचार्य कृष्णमोहन तिवारी ने भी इस अवसर पर सत्संग दिये और सत्संगियों को प्रेरणा दी। डा० नेगी ने हैदराबाद में अपने पिता द्वारा रचित विख्यात आरती का पाठ किया। इस बार मुझे हजूर आनन्दराव जी महाराज की अनुपस्थिति से खेद हुआ। कुदरत की बात है कि हनमकुण्डा के पश्चात मैं हैदराबाद में चार पाँच दिन सत्संगों में व्यस्त होते हुए, मैं इस बार हजूर आनन्द रावजी महाराज को न मिल सका। पहली बार ही ऐसा मौका बना कि हम दोनों का साक्षात्कार न हो सका।

मुझे बिशेषकर दुख इस बात का है कि सम्भवतया हमारे इस मिलाप के न होने के कारण मेरे परमप्रिय हजूर आनन्दरावजी महाराज ने अचानक २२ मार्च को चोला छोड़ दिया है। मैं उनका अब भी आदर करता हूँ। ज्यों ही मैंने उनके चोला छोड़ने की खबर लगी, मुझे धक्का लगा।

पहली फरवरी की रात्रि को हम हमेशा की भाँति सेठ विद्यानाथ के घर पर रहे और २ फरवरी को करीमनगर के लिए रवाना हो गये। करीम नगर में श्री रामकोठ रेडी के घर पर सायंकाल का सत्संग आयोजित था। इसलिये हम ३ घन्टे के लिये वैमनवाड़ा दक्षिण काशी गये और वहां पर एक सत्संग दिया, जिसमें वैमनवाडा के श्रद्धालु सत्संगी बड़े चाव से सम्मिलित हुए। श्री रामकोट रैड्डी के घर पर सायंकाल का सत्संग बहुत प्रभावशाली रहा। मैं यह सूचना आपको बहुत संक्षेप में दे रहा हूँ। ३ फरवरी को हम प्रातः काल करीमनगर से रवाना होकर सायंकाल हैदराबाद पहुँच गये। ३ से ६ बजे प्रातःकाल तक हैदराबाद में मानव दयाल सत्संग सभा की ओर से, फकीर सत्संग केन्द्र कबीर आश्रम की ओर से चित्तल बस्ती सत्संग केन्द्र कबीर आश्रम की ओर से और संघ मित्रा सोसायटी की ओर से, अलग-अलग स्थानों पर चार विशाल सत्संग आयोजित किये गये थे। इन सभी सत्संगों में बहुत भारी संख्या में हैदराबाद के ओर से करीम नगर निजामाबाद आदि से आये हुए सत्संगी भारी संख्या में सम्मिलित हुए। चिन्तलबस्ती की गायन मंडली सभी सत्संगों पर मौजूद थी। इनके द्वारा प्रस्तुत गायन बहुत ही प्रेरणा दायक होते हैं। यह मंडली हनमकुण्डा में भी रोजाना प्रातःकाल अपना मधुर संगीत प्रस्तुत करती रही। चिन्तल बस्ती के सभी सत्संगी प्रेम श्रद्धा और अटल विश्वास से ओत-प्रोत हैं।

मेरे अंशों ! वास्तव में, आन्ध्र प्रदेश और महाराष्ट्र के सत्संगियों

में सच्चा, हार्दिक और आत्मिक उत्साह है। हम ६ फरवरी सायंकाल निजामाबाद पहुँच गये, जहाँ पर ७ फरवरी को प्रातःकाल एक सार्वजनिक स्थान पर विशाल सत्संग आयोजित हुआ। इस सत्संग में श्रोताओं की संख्या बहुत अधिक थी। सभी ने श्रद्धा और ध्यानपूर्वक सत्संग का रसास्वादन किया। ७ फरवरी को ही हम दुपहर को निजामाबाद से रवाना होकर करीब ३५ किमी० दूर आरमूर के छोटे से कस्बे में पहुँच गये। यहाँ के सत्संगी कई वर्षो से आग्रह कर रहे थे कि आरमूर को आन्ध्र प्रदेश के दौरे में शामिल कर लिया जाये। इस कस्बे के लोग राधास्वामी मत से परिचित नहीं है, फिर भी ७ फरवरी के रात्रि के सत्संग में ७, ८ से भी अधिक श्रद्धालुओं ने भाग लिया। यह सत्संग बहुत ही सफल रहा। जब श्रोताओं को यह इस सत्संग के द्वारा पता चला कि राधास्वामी मत और सनातन धर्म में कोई भेद नहीं है, उनकी आँखें खुल गयी। उनमें से बहुत से लोग नामदान लेने के लिये मेरे पास आये। परमदयालजी महाराज की यह भविष्यवाणी कि राधास्वामी मत एवं मानवता धर्म विश्व में फैलेगा, हर एक नये केन्द्र पर सत्य प्रमाणित हो रही है। हम ८ फरवरी को प्रातःकाल अहेरी महाराष्ट्र के लिये रवाना होकर सायंकाल करीब ७ बजे अहेरीनगर की परिधि में पहुँच गये। क्योंकि रास्ते में हम बलीशाह में एक सत्संगी के यहाँ रुके थे। वहाँ पर अहेरी से आये हुये अहेरी संस्था के सैकेटरी श्री विलास ने टेलीफोन द्वारा हमारे अहेरी पहुँचने के समय की सूचना दे दी थी।

इसलिये हर वर्ष की भाँति सैकड़ों सत्संगी जलूस के रूप में हमारी कार के आगे २ चले और बाजे गाजों से धीरे-२ सत्संग के स्थल पर पहुँचे। ८ से १० फरवरी तक हम अहेरी में रहे। ९ फरवरी को प्रातः और सायं और १० को प्रातःकाल सत्संग हुए, जिनमें हमेशा की भाँति सत्संगी बहुत भारी संख्या में सम्मिलित हुये। १०

फरवरी सायंकाल हम नागपुर के लिये रवाना हो गये और उसी रात्रि को नागपुर पहुँच गये ।

इस बार नागपुर में न ही केवल कोठारीजी के घर पर, बल्कि वायु सेनानगर में स्क्वार्ड्न लीडर श्री भटनागर के घर पर भी विशेष सत्संग आयोजित किया गया । वायु सेना नगर में हमारे बहुत सत्संगी रहते हैं । श्री भटनागर और निर्मला तथा उनके पति सत्संग आयोजित करने में बहुत रुचि ले रहे हैं । श्री रतन सी दामजी कोठारी तो पूर्ण रूप से शरणांगत हैं । वह स्वयं और उनका सारा परिवार सन्तमत में पूरी श्रद्धा और आस्था रखते हैं । इन सभी लोगों ने निश्चय किया है कि नागपुर में मानवता मंदिर की स्थापना की जानी चाहिए और उसका भवन निर्माण करना चाहिए । मैं उनके इस निश्चय का आदर करता हूँ और मुझे विश्वास है कि नागपुर वालों की यह मनोकामना पूरी हो जायेगी । मैं यह बात इसलिये नहीं लिख रहा कि मैं स्वयं केन्द्रों की स्थापना करने का इच्छुक हूँ । किन्तु अब किसी विशेष नगर के लोग ऐसी इच्छा करते हैं, तो मैं उन्हें सदभावना देता हूं । ऐसे केन्द्रों से मेरा कुछ लेना देना नहीं होता, केवल प्रेम का रिश्ता रहता है । सभी केन्द्रों के चलाने की जिम्मेवारी, वहाँ के रहने वाले सत्संगियों की ही होती है और वे पूर्णतया स्वतन्त्र होते हैं । हाँ मानवता मंदिर उनकी आर्थिक सहायता अवश्य कर सकता है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि मानवता धर्म हमारे युग की माँग है । इसलिए मालिक की मौज से विश्व भर में मानवता धर्म के केन्द्र तेजी से स्थापित हो रहे हैं । मानव परिवार की सदस्य विश्व भर में बढ़ते चले जा रहे हैं । इसलिए मानवता का प्रेम भी फैलता जा रहा है । मानव धर्म के निर्माण के बाद विश्व भर के सत्संगी एक स्थान पर मिल सकेंगे । इस प्रकार मानवता धर्म के विश्व प्रेम का स्वप्न साकार हो रहा है । यह सब परमदयालजी महाराज दातादयालजी महाराज की दया, विचार शक्ति और मालिक की मौज से घटित हो रहा है । उस

सर्वाधार परमतत्व अरूप और अनामी दयाल से तब तक प्रेम नहीं हो सकता, जब तक मानव-मानव से प्रेम नहीं करता। इसलिये सदगुरु से सच्चा प्यार करने के लिए प्यार का कोई न कोई नमूना या निष्ठा बनाना बहुत जरूरी है। तुम सदगुरु को भाई मानकर बेटा मानकर पिता मानकर, मित्र मानकर या कोई भी रिश्ता स्थापित करके जब प्यार करोगे, तो अन्त में यह प्यार पराभक्ति में बदल जायेगा और तुम सदगुरु मे एक हो जाओगे।

नागपुर के सत्संगियों के विश्वास और उनकी श्रद्धा का उदाहरण भी मुश्किल से मिलता है। करीब ७ वर्ष पूर्व श्री आर०डी० कोठारी ने जो मुझे पहले कभी नहीं मिले थे, एक पत्र लिखा। इसमें उन्होंने मुझे बताया था कि डाक्टर ने उनके गले में कैन्सर का निदान किया है। उन्होंने मेरे से दर्दे दिल से आर्शीवाद माँगा। मैंने उन्हें आर्शीवाद का पत्र लिखा। उन्होंने उस पत्र को रोजाना मस्तक से लगाना शुरु किया और उनका रोग दूर हो गया। यह सब कुछ उनके अपने विश्वास, उनकी श्रद्धा और उनके प्रेम का फल है। मैंने सद-भावना और आर्शीवाद देकर उनके विश्वास को पक्का किया। जहाँ सचाई होती है, वहाँ पर ऐसे चमत्कार स्वभाविक होते हैं। किन्तु सत्संगियों को केवल इन चमत्कारों तक ही नही रहना चाहिये। ऐसी घटनाओं से उन्हें प्रेरणा लेनी चाहिए कि वह गुरु के असली आन्तरिक अविनाशी रूप को समझकर उसे साक्षात परमतत्व मानकर प्यार करें। ऐसा करने से उनकी सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति के साथ-२, उनके घर में सुख शान्ति आनन्द का राज्य रहेगा और वे अन्त में जीवन मुक्ति को पा लेंगे। जब मैं सत्संगियों को ऐसे विचार देता हूँ, तो उनका विश्वास टूटता नहीं बल्कि वह और पक्का हो जाता है। उनकी भक्ति अन्धी भक्ति न रहकर ज्ञान की भक्ति में बदल जाती है। वह उस समय नीचे दिये गये दोहे को भली भाँति समझ लेते हैं–

"गुरु किया है देह को सतगुरु चीन्हा ना हीं
कहें कबीरता दास को तीन ताप भरमाह"

इसका मतलब यह है कि जब आप गुरु को उसकी असलियत पहचान कर साधारण मनुष्य न समझते हुये और परमतत्व मानते हुये प्यार करोगे, तो तुम दुःखी नहीं रहोगे और तीन तापों से बच जाओगे यह तीन ताप शरीर का रोग, मन का शोक और मृत्यु का भय है। निबलता का मतलब शरीर की कमजोरी है, जिसके कारण शरीर में कई रोग पैदा हो जाते हैं। जब आप सदगुरु को परमतत्व मानकर, अपने आपको सुपुर्द कर देते हैं और उससे प्रार्थना करते हैं कि वह आपके शरीर को स्वस्थ्य कर दें, तो आपकी श्रद्धा के कारण आपके मन की शक्ति बढ़ जाती है और आपका रोग दूर हो जाता है। इसके साथ २ आप रुहानियत में भीं उन्नति करते हैं और आपके जीवन का लक्ष्य केवल शरीर की स्वस्थ्यता तक सीमित न रहकर, परमपद पर पहुँचने का हो जाता है। अगर आप केवल गुरु को रोग दूर करने वाला जादूगर मानकर ही उसका ध्यान करेंगे, तो भी आपका रोग दूर हो जायेगा, लेकिन आप रुहानियत में आगे नहीं बढ़ पायेंगे। मैं समझता हूँ कि श्री आर०डी० कोठारी इस भेद को समझते हैं, इसभेद को समझते हैं, इसलिये वह शरीर मन आत्मा से ऊपर उठकर, शरीर मन और आत्मा की उन्नति करते हुए अन्त में जीवन मुक्त अवस्था को पा जायेंगे। मैंने आपको उनकी मिसाल इसलिए दी है कि आप भी स्वाध्य प्राप्ति के लिये, मन के सुख के लिये और आत्मा का ज्ञान प्राप्त करके, मौत के भय से मुक्त होने के लिए, जब गुरु से प्यार करें, तो उसे जाते पाक मानकर अर्थात अविनाशी तत्व मानकर करें। ऐसे गहरे प्यार से आपका लोक और परलोक दोनों बन जायेंगे, क्यों कि आप गुरु को केवल मनुष्य नहीं मानेंगे बल्कि उसके अन्दर परम की झलक देखकर उसके सदगुरु पने को पहचान जायेंगे। मेरा यह

अनुभव है कि जब मैं अपने प्यारे, विश्वास और प्रेम से ओत-प्रोत उन सत्संगियों को सच्चाई बताता हूँ, जो मेरे रूप को प्रगट कर लेते हैं, तो उनका विश्वास टूटता नहीं बल्कि और भी पक्का हो जाता है उनके दुनियावी काम भी बनते रहते हैं और वह अध्यात्मिकता की ऊँची चोटी की तरफ भी बढ़ते रहते हैं। उनको इसी पराभक्ति के रास्ते पर चलाने के लिए ही मैं इस चोले में आया हूँ और मुझे परम दयालजी महाराज ने यह कर्तव्य सौंपा है। मुझे यह कर्तव्य पूरा करने में प्रसन्नता होती है।

इस प्रकार १२ फरवरी तक नागपुर में सत्संगों का सिलसिला समाप्त करके हम इटावा के लिये उस रेलगाड़ी से रवाना हो गये, जो रात को पौने बारह बजे भोपाल पहुँचती थी। मेरे साथ सफर करने वाले लखनऊ के आचार्य श्री कृष्ण मोहन तिवारी और मेरा प्यारा बेटा चन्द्र नेगी थे। हमने उज्जैन की श्रीमती रामाबाई को पहले लिख दिया था कि वह मुझे भोपाल स्टेशन पर मिले और वहाँ से उज्जैन ले जायें। किन्तु हमने उन्हें जिस गाड़ी से पहुँचने का समय दिया था, वह गाड़ी भोपाल रात के २ बजे पहुँचती थी। नागपुर के स्टेशन पर हमें अचानक उस गाड़ी में सीटें मिल गयी जो भोपाल पौने बारह बजे पहुँचती थी। मैंने नागपुर स्टेशन पर श्री भटनागर को हिदायत करदी थी कि वह टेलीफोन के द्वारा श्रीमती रमाबाई को सूचना दे दें कि मैं दो बजे रात्रि के स्थान पर पौने १२ बजे रात को भोपाल पहुँच रहा हूँ। किसी कारण से उज्जैन में टेलीफोन पर जब यह सन्देश पहुँचा, रमाबाई और उनके सुपुत्र अखलेश उससे पहले ही भोपाल के लिए कार द्वारा रवाना हो चुके थे। जब हमारी गाड़ी कुछ लेट होने के कारण १२ बजे भोपाल स्टेशन पर पहुँची, तो हमें उज्जैन का कोई भी आदमी प्लेटफोर्म पर दिखाई नहीं दिया। आचार्य तिवारी और चन्द्र नगेश नेगी को यह चिन्ता हुई कि मैं भोपाल

स्टेशन पर अकेला कैसे रहूँगा । मैंने कुली से सामान उतरवा लिया । श्री तिवारी और नेगी को तसल्ली दी कि वह निश्चिन्त होकर दिल्ली की ओर जाने वाली गाड़ी से अपना सफर जारी रखें, जिससे मैं उनके साथ भोपाल तक आया । मैंने उनकी चिन्ता दूर करते हुए कहा, "आप जानते हैं कि मैं विश्वभर में कई बार अकेला यात्रा करता हूँ । इसलिये आप घबरायें नहीं ।" थोड़ी देर तक मैं प्लेट फोर्म पर रमा बाई की प्रतीक्षा करुँगा, मगर वह न आयीं तो मैं बेटिंग रूम में चला जाऊँगा ।" मैंने यह कहकर उनको पूरी तसल्ली दी और वे दोनों कुछ ही मिनट के अन्दर उसी गाड़ी से रवाना हो गये ।

मैंने १० मिनट तक प्लेटफोम पर इन्तजार किया । जब मुझे कोई भी जान पहचान का व्यक्ति नजर नहीं आया, तो मैंने कुली को कहा कि वह मुझे प्रतीक्षालय में ले जाये । उसने सामान उठाया और सीड़ियों से पुल पर चढ़ा । मैं उसके पीछे २ चल रहा था । जब वह पुल पर पहुँचा, तो उसने मुझे सम्बोधित करते हुए कहा, "श्रीमान जी ! प्रतीक्षालय चलना है तो हमें बायीं ओर मुड़ना चाहिए और यदि शहर की तरफ चलना है, तो हमें दायीं ओर चलना चाहिए ।" ना मालूम मुझे ऐसी प्रेरणा क्यों हुई कि प्रतीक्षालय की बजाय शहर की ओर जाना चाहिए । सम्भवतया रमाबाई उधर से ही प्लेटफार्म पर आ रही होंगी । जब हम पुल से टिकट घर की ओर सीडियों से उतर रहे थे, तो मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि रमाबाई और अखलेश सीडियों से ऊपर की ओर आ रहे थे । जब मैंने उन्हें अपने मन की बात बताई तो उनको भी अत्यन्त हर्ष हुआ । यदि मैं प्रतीक्षा लय में चला गया होता, तो वह मुझे प्लेट फार्म पर न पाकर दुखी होते । मैंने आपको यह घटना इसलिये बताई है कि आप हमेशा अपने अन्तर में मालिक को याद करते हुए हर समस्या में अपने आपको उसके सुपुर्द करते रहें । उसकी मौज आपको कभी धोखा नहीं देगी ।

मैं इस सन्देश के द्वारा आपको सच्चा रास्ता बता रहा हूँ और दिल से चाहता हूँ कि आप मेरे अनुभव से लाभ उठाकर अपने जीवन को सफल बनायें और दाता दयाल जी के नीचे दिये गये शब्द को याद रखें।

जों कुछ होगा, मौज से होगा।
मौज को परखसुजान री ।।

मैं इसकी व्याख्या किसी और मौके पर करूँगा। मेरे परमप्रिय सदगुरु रूप सत्संगियों ! इस मासिक सन्देश के लिये, यहाँ तक दौरे की सूचना काफी रहेगी। मैंने आपको भोपाल के स्टेशन पर टिकट घर की ओर जाने वाली पुल की सीड़ियों पर छोड़ा है अगले मासिक सन्देश में आपको उज्जैन इटावा और इलाहाबाद तथा राधास्वामी धाम की सैर करायी जायेगी। इन्हीं शब्दों के साथ मैं आपको इस महीने की शुभकामना देता हूँ और सच्चे दिल से चाहता हूँ कि आपका जीवन सुखी समृद्धशाली आनन्दमय और शान्तिप्रद हो।

सबको राधास्वामी !

आपका फकीरमय
मानव

[माह जुलाई के पृष्ठ ३६ से आगे, राधास्वामी योग]

यह अविद्या का बीज सुषुप्ति में रहता है। यह न समझो कि सुषुप्ति जीव ही में है। ब्रह्म में भी सुषुप्ति है और इसी सुषुप्ति के अभिमान से ब्रह्म का नाम हिरण्यगर्भ अर्थात् सोने का अडा है। सोने के दो अर्थ हैं। एक स्वप्नावस्था और दूसरा सुवर्ण (कंचन) है। जिसे तुम आराम और सुख कहते हो यह दोनों सुषुप्ति में है। पता नहीं चलता कि सुषुप्ति वस्तु क्या है और किस प्रकार वह रहती है। किन्तु पता क्या चले वह अण्डे की हालत है और अण्डा प्रकृति को बाँधने वाली युक्ति है : सच्चे गुरु की सेवा और संग के प्रभाव से इसके तोड़ने का गुरु हाथ आता है अब राधास्वामी मत इस गुरु के हाथ आने की कुजी है

यह भूलकर न समझो कि सन्त मत कर्म का विरोधी है। नहीं ! कभी नहीं !! यदि वह विरोध करता है तो केवल अहँ-कार युक्त कर्म का। अहँकार को छोड़ो, आशा का मुंह मोड़ो फल की कामना न करो। फिर तुम कर्म करो। यह कर्म फिर न कहलायेगा बल्कि त्याग कहलायेगा। यह त्याग गुरु भक्ति से मिलता है।

—०—

उनचासवाँ वचन

गुरु के पास किस प्रकार जायें ?

पहले साधन की विधि तो तुमको बता दी गई, अब इस दूसरी विधि का निर्देश इस प्रकार किया जाता है कि तुम गुरु के पास जाओ, किन्तु जाओ किस प्रकार इस प्रश्न का भी उत्तर देना आवश्यक है।

पहली रीति तो यह है कि अन्डे के रूप में जाओ। बंधे हुए, सिकुड़े, सिमटे हुए और मानसिक वेगों को रोके हुए और

शिष्टाचार के नियम को हृदयांकित किये हुए जाओ । यदि यह नहीं है तो कुछ भी नहीं है । जो मन पर संयम करके गुरु के पास नहीं जाता उसका आना जाना व्यर्थ है । शक्ति अपने मन के संयम में है उसके असंयम करने में शक्ति नहीं है । सब मनोवेगों को रोक कर गोल गोल अन्डा बनकर गुरु की सेवा में पहुंचो और उनके सम्मुख पड़ रहो । वह अपनी आत्मिक गर्मी देकर अन्डे को फोड़ देंगे और तुम विहंग अर्थात् पक्षी बन जाओगे । इसी को गुरु नानक ने विहंग मार्ग बताया है । अन्डे के फूटते ही तुम ऊंचे उड़ने वाले आकाश में भ्रमण करने वाले हो जाओगे और इस प्रकार फुदकते हुए पर खोलकर उड़ने लगोगे कि काल व कर्म का व्याध (शिकारी) या माया रूपी बहेलिया अपने जाल में तुमको न फंसायेगा ।

दूसरी रीति यह है कि तुम मिट्टी के ढेले की तरह गतिहीन होकर पड़ रहो । गुरु कुम्हार की तरह अपने वचन के डंडे से तोड़-फोड़ करेंगे, पीसेंगे और बारीक बनायेंगे और अपनी आत्मिक शान्ति का पानी दे देकर तुमको गूथेंगे और जब तुम में नर्मी, चिकनाई और सूक्ष्मता आ जावेगी, वह घड़े के रूप में आप ही बना लेंगे । घड़ा बनाकर वह एक हाथ नीचे देकर दूसरे हाथ से थपथपाते हुए घड़े को सुन्दर, ठोस और काम के योग्य बना लेंगे । धूप में सुखायेंगे और आग में रखकर पक्का कर लेंगे और फिर आवां से निकालकर तुम में अध्यात्म का ठण्डा जल भर देंगे और तुम शीतल हो जाओगे । तुम संसार के तीन तापों के दुखों से छूट जाओगे । घड़े को संस्कृत में घट कहते हैं । तुम्हारी मिट्टी लेकर वह तुमको घट योनि अर्थात् अगस्त ऋषि के रूप में बदल देंगे और फिर जितना परमार्थ का जल तुम में भरता जायेगा तुमको तृप्ति न होगी । तुम समुद्र सोख हो जाओगे । यह पूर्णता का महत्व है और पूर्ण

बनाना ही इसका उद्देश्य है ।

यह बात तुम से अलंकार की भाषा में कही गयी हैं। यह विचारों के प्रगट करने की कवियों की रीति है जिसको हिन्दू पुराणों ने किसी समय बहुत महत्व दे रखा था, किन्तु दुःख तो यह है कि तुमको पद्य के स्थान पर गद्य रुचिकर हो गया है। अलंकार और उपमाओं को नहीं समझते ।

तीसरी रीति यह है कि यदि तुम में स्वभाव से ही इन्द्रिय दमन है और तुमने चौसाधन कर लिये हैं। मन शिष्ट आचार और विचार के श्रेणियों से पार हो चुका है, तो प्रसन्नतापूर्वक जाओ, उनकी वाणी को सुनो और उनकी वाणी से प्रभावित होकर योग का साधारण साधन करो ताकि तुम्हारे मन की वृत्ति, ब्रह्माकार, परब्रह्माकार और सत्याकार बन जाय। यह कमी रह गई थी। वहाँ जाने से आसानी से पूरी हो जायेगी और तुम शीघ्र ही अपने अन्तर में असाधारण परिवर्तन देखोग ।

बिना योग साधन के कोई भी ज्ञानी नहीं हो सकता। केवल चेतन, चेतन और ब्रह्म-ब्रह्म चिल्ला देने से काम नहीं होता। वाचक ज्ञान से होता क्या है ? दो चार पुस्तक पढ़ लेने से ज्ञानी नहीं बना जाता ।

सार वचन राधास्वामी की वाणी है :—

विद्या पढ़ जो करें विचार, बुन्द ज्ञान भी मिला न सार ।
सार बुन्द है त्रिकुटी पार, योगेश्वर चढ़ करें विचार ॥
प्राण योग कर पहुंचे यहाँ, बुन्द ज्ञान उन पाया वहाँ ।
आगे का गुरु मिला न उनको, वहाँ का ज्ञान सुनाया सबको ।
योग बिना विद्या पढ़ कहते, विद्या बुद्धि से तृपित रहते ।
यह निपट अहंकार में भूले, इधर न उधर यमपुरी झूले ॥

चौथी रीति यह है कि यदि गुरु को गुरु मानने में आपत्ति

है तो न मानो । ऐसे पन्थाई भी हैं जो अपनी पहल टेक छोड़ने के लिये तैयार नहीं हैं । यद्यपि उन सब के ग्रन्थों में गुरु धारण करने का कड़ा आदेश है । मगर इन लोगों ने गुरु को कुछ और ही मान लिया है और इस बात को जानते भी हैं कि उन के धन्धे में अब कोई जानकार आध्यात्मिक गुरु नहीं है और यह जानकर भी अपने ऊपर दया नहीं करते और न सच्ची राह में आते हैं । राधास्वामी मत इनको आदेश देता है कि सन्त मत के सब पन्थ एक हैं । नियम एक हैं और शिक्षा एक हैं । उनके नियम, शिक्षा और भेद में कोई भी अन्तर नहीं हैं । हर व्यक्ति सुगमता से बिना किसी सोच विचार के समय के गुरु के पास जाकर लाभ प्राप्त कर सकता हैं । परन्तु हाँ यदि पन्थ की टेक है तो यह भी सही । इससे इतनी हानि नहीं होती मगर गुरु न धारण करने से हानि होती है । जिसको तुम गुरु बनाते हो यह समझ लो कि वही नानक और कबीर है और नानक और कबीर ही ने अब ऐसे रूप में आत्मिक शिक्षा का क्रम जारी कर रखा है । इस तरह गुरु धारण करके पंथ को टेक भी रखी जा सकती है । यदि यह भी न हो तो वृद्ध जन बड़ा भाई या मित्र के रूप में उनसे शिक्षा का लाभ प्राप्त करो यह भी निष्ठायें हैं परन्तु असली भलाई तो गुरु ही के रूप में स्वीकार करने से है ।

इाणी है .—(शब्द).

सत्संग करत बहुत दिन बीते, अब तो छोड़ पुरानी बान ।
कब तक करे कुटिलता गुरु से,अब तो गुरु को ले पहिचान ।।
गुरु को तुम मानुष मत जानो, वह है सत्त पुरुष की जान ।
जैसे तैसे मन मन समझाओ, धर परतीत करो उन ध्यान ।।
दया महर से वचन सुनावें, वह है पूरण पुरुष अमान ।
धरी देह मानुष की गुरु ने, ज्यों त्यों तेरा करें कल्याण ।।

सेवा कर पूजा कर उनकी, उन ही को गुरु नानक जान ।
वही कबीर वही सत्त नामा, सब सन्तन की वही पहिचान ।।
तेरा काज उन्हीं से होगा, मत भटके तू तज अभिमान ।
चूके मत अवसर अब पाया, बढ़ कर इनसे कोई न मिलान ।।
जो तू अबकी गुरु से चूका, तू भरमेगा चारों खान ।
फिर ऐसे गुरु मिलें न कबहीं, मान मान तू अब ही मान ।।
पढ़ पढ़ पोथी गा गा साखी, क्यों मन में तू धरता मान ।
इसी मान ने ख्वार किया है, यही मान अब करता हान ।।
ताते प्यारे कहूँ बुझाई, यह इस्तगना भली न जान ।
जल्दी करो कपट को छोड़ो, श्रद्धा भाव बढ़ाओ आन ।।
इतने पर मन कहा न माने, तू फिर अपनी तू ही जान ।
सिर पर तेरे हुक्म काल का, ताते मन तेरा नहीं मान ।।
लगा रहेगा संग में गुरु के सहज सहज शायद मन मान ।
एक बात जानी हम भाई, है तू बड़का बेईमान ।
राधास्वामी कहें बुझाई, ऐसे जीव होंय हैरान ।।

—:o:—

पचासवां वचन

वियोग (बिछोह) और योग (मिलाप)

बिछोह में दुख है, मिलाप में सुख है । वियोग में अज्ञान है योग में ज्ञात हैं । वियोग में भ्रम हैं, योग में निभ्रान्ति है । बिछोह में अशान्ति है, मिलाप में शान्ति हैं । यह बहुत सुगम और छोटी-छोटी बातें हैं, जिनको साधारण बुद्धि का मनुष्य भी जीवन की हर अवस्था में ठीक और सच्चा स्वीकार करेगा

जब तक स्त्री अपने पुरुष से नहीं मिलती दुखी, अज्ञानी और अशान्ति बनी रहता हैं और जब मिलाप होता हैं सुखी, ज्ञानी और शान्त हो जाती हैं इसी प्रकार और समझ लीजिये

लड़के में ज्ञान नहीं है। विद्या से उसे वियोग रहता है। वह पाठशाला में पढ़ने जाता है। पहले अक्षरों को अलग-अलग पाकर घबराता है। फिर जब अक्षरों को मिलाकर शब्द, वाक्य और पंक्तियाँ बनाता है। धीरे धीरे उसका आनन्द बढ़ता जाता है, यहाँ तक कि वह विद्या की सब श्रेणियाँ पार कर लेता है। विद्या और विद्या के अभिप्राय को अपने अन्तर में देखता है तब उसकी व्यग्रता, बेचैनी अज्ञान और अशान्ति दूर हो जाती है। अब विद्या या ज्ञान उससे अलग नहीं रहा। इसलिये उसे आनन्दित तो होना ही चाहिए ठीक यही दशा हमारी है। जब तक हम अपने आपको दुनियाँ से अलग मान रहे हैं, तब तक हमकों दुख है। जब अपने आपको और अपने आप के आपे को इसमें (दुनियाँ) में देखने लगेंगे, उस समय दुख जाता रहेगा। दुख केवल कुल के अंशों में है कुल पूर्ण) में नहीं है।

इस कुल से मिलने के दो रूप हैं। एक तो अपने आपको अलग थलग रखकर मिलाप करना। यह अपूर्ण मिलाप है। और दूसरा यह कि अपने आपको इस तरह मिला देना कि नाम के लिये भी अन्तर न रहे यह पूर्ण मिलाप हैं।

गुरु और चेले का मिलाप भी अपूर्ण और पूर्ण का मिलना है। गुरु आइडियल पूर्ण है। चेला अपूर्ण है। इसको सर्वदा ध्यान में रखना कि यदि गुरु के साथ मिलने में थोड़ा सा भी अन्तर रह गया तो काल रूपी व्याधे के आक्रमण से मुक्ति न होगी। हाँ ! व्यक्तित्व की स्थिति रखने में भी एक भलाई की सूरत है। जैसे समुद्र में मछली रहती है और उसी का रूप बनी हुई आनन्द का भोग करती है, इसी प्रकार नाम के लिये अपने व्यक्तित्व को स्थिर रखकर काम किया जा सकता है। परन्तु यहाँ भी कुछ न कुछ अहंकार का मिलान रहेगा। इस-

लिये अच्छा तो ये है कि सर्वाधार की भक्ति इसप्रकार की जाय कि यह अन्तर भी शेष न रहे। यही अमर जीवन का रूप हैं।

गुरु की संगत मिलाप (योग) की पहली सीढ़ी है। गुरु के वचन सुनते ही उनके संग का आनन्द दूसरी सीढ़ी है। यह मछली पानी का दृष्टान्त है और आन्तरिक अभ्यास करते हुए मछली और पानी के एक रूप होने की क्रिया तीसरी सीढ़ी है और जब वह इस प्रकार मिल जाय कि नाम को भी अन्तर न रहे और अन्तर का ज्ञान पूरे रूप से मिट जाय तो यह चौथी अवस्था और चौथा पद है और यही आदर्श है। —:o:—

इक्यावनवां वचन

एक दृष्टान्त

पन्द्रह आदमी नदी के पार जा रहे थे। वे गिनती में पन्द्रह थे जब वे नदी के उस घाट आये तो बिचार आया कि गिनती कर लें कि कहीं कोई पानी में डूब तो नहीं गया एक ने गिनती की कि चौदह तो हैं और पन्द्रहवाँ नहीं हैं। सब मिलकर शोक मनाने लग और देर तक रोते रहे। किसी समझदार पुरुष की दृष्टि उन पर पड़ी। पूछा कि तुम क्यों रो रहे हो। उन्होंने कहा कि हम घर से पन्द्रह चले थे। चौदह मौजूद हैं, पन्द्रहवां डूब गया। समझदार पुरुष ने कहा कि चिन्ता न करो। पन्द्रहवाँ भी मौजूद है।

इस बात से उनको कुछ सन्तोष मिला। मगर शोक पूर्णतया दूर नहीं हुआ और बेचैनी की अवस्था में फिर प्रश्न करने लगे कि पन्द्रहवाँ कहाँ हैं ?

---

१. एक फारसी शेर का उल्था :—

सूफी हुआ गुम, नहीं अब उसका मजहब।
बस यार के मिलन से था उसका मतलब॥

समझदार ने कहा कि मेरे सामने एक एक गिनो। उन्होंने गिना मगर गिनने वाला अपने आपको नहीं गिनता था। बेचैनी और चिन्ता दूर नहीं होती थी।

तब ज्ञानी जी ने सबको एक पंक्ति में खड़ा करके गिनना प्रारम्भ किया। एक से लेकर पन्द्रह तक गिन गया उसने कहा कि तुम पन्द्रहों के पन्द्रह मौजूद हो। कैसे कहते हो कि पंद्रहवाँ खो गया। वह अचम्भे में रह गये। फिर भी सन्तोष नहीं हुआ तब उस ज्ञानी ने उनसे कहा कि तुम में से प्रत्येक औरों को तो गिनता है मगर अपने आपको नहीं गिनता। इस कारण से भ्रम है। वे समझ गये। शान्ति मिल गई और खोया हुआ व्यक्ति मिल गया।

यह संसार नदी है। पन्दरह पथिकों में दस कर्म और ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। चार अन्तःकरण मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार हैं और आत्मा पन्दरहवाँ है। इस भवसागर के इस ओर आकर सबको गिनता है। सबका ज्ञान तो प्राप्त करता है, मगर अपना ज्ञान उसे नहीं होता। यही असली बेचैनी का कारण है।

समझदार पुरुष गुरु है जो अपनी विवेक की शक्ति देकर ज्ञान देते हैं तब भ्रम और अशान्ति दूर हो जाती है।

—×—

बावनवां वचन

अपना आप

जो कुछ है वह हमारे अपने ही अन्दर है लेकिन दृष्टान्त के पन्द्रहवें आदमी की तरह हम उसे खोया हुआ समझते हैं। गुरु मिलें तब यह भेद बतावें। गुरु जो बतावेंगे वह हमको

हमसे पृथक या आपे को भी हमसे पृथक न बतावेंगे। हाँ उपाय और क्रियाशैली में पृथकता अवश्य होगी। कोई किसी तरह समझाता है और कोई किसी तरह। समझाने के ढंग निराले होते हैं और समझाने के ढग में भी निरालापन होता है। यहाँ भी कोई किसी तरह समझता है कोई किसी तरह।

गुरु केवल ख्याल देते हैं और वह ख्याल उसी तरह दिया जाता है जिस प्रकार छोटे बच्चे को शीशा दिखाया जाता है। बच्चे को दर्पण में एक आदमी दिखायी देता है। बच्चे ने दर्पण देखा। उसने उसमें सचमुच आदमी देखा। दर्पण के आदमी के देखने से उसे सचमुच प्रसन्नता है। बातों पर विश्वास हो गया। फिर बच्चे से कहा गया कि दर्पण का आदमी तुझसे भिन्न नहीं है मगर बाहरमुखी बच्चा इसको अभी तक नहीं समझता। वह प्रश्नोत्तर करने लगता है। समझाने वाले ने चिताया। जब तू दर्पण देखता है तभी तो उसमें आदमी दिखाई देता है यदि तू न देखे तो कभी उसमें मनुष्य दिखायी न देगा। यह बात अक्षरसः सत्य है लेकिन बच्चा उसे नहीं मानता। वह कैसे माने! वह तो जब दर्पण में देखता हैं उसे आदमी दीखायी देता है। ऐसा नहीं होता कि दर्पण आदमी से खाली रहे। यह बात उसकी समझ में नहीं आती कि दर्पण का आदमी वह स्वयं ही है। उसने तो अपने आपको दर्पण के आदमी से भिन्न मान रखा है। भिन्न मानना ही भ्रम है और इसी का नाम अज्ञान है। अज्ञानी अपने बाल बच्चे और अपनी सम्पत्ति को अपने से भिन्न जानता है। यद्यपि वह सबका पैदा करने वाला है। यह सब दर्पण के आदमी की तरह उसी के सहारे रहते हैं। उसका अस्तित्व उनके अस्तित्व की नींव है। दर्पण में यह स्वयं ही आदमी को डाल देता है। तब ही तो उसमें आदमी दिखायी देता है। यदि यह न डाले तो फिर

दर्पण में आदमी का होना कठिन है, मगर इस रहस्य को कितने लोग समझ सकते हैं ? इसी एक बारीकी के न समझने से तरह तरह के वाद-विवाद होते रहते हैं। जितनी बातें की जाती हैं वह भ्रम को और भी बढ़ाती हैं। गुरु की वाणी है—

आप आपको आप पिछानो।
कहा और का नेक न मानो ।।

मगर अपने आपको पहिचानना सरल काम नहीं है। दुई देखने का दोष दूर हो तब अपने आप की समझ आवे। गुरु अपने विचित्र ढंग से इस अपने आप को समझ बूझ देकर शांति दिला देते हैं। दर्पण, दर्पण का प्रतिबिम्ब और दर्पण देखने वाला तीन सूरतें हैं। एक ओर दर्पण है, एक ओर दर्पण देखने वाला है, और बीच में प्रतिबिम्ब है। गुरु पहिले दर्पण की ओर से आँख मींचने का आदेश करते हैं। केवल बीच के प्रतिबिम्ब के केन्द्र पर आँख जमाने का साधन बताते हैं। त्रिपुटी गयी। एक ओर से बेपरवाह हो गयी दर्पण का ख्याल जाता रहा। केवल द्वत भाव रह गया-आदमी और आदमी का प्रतिबिम्ब।

अब इस प्रतिबिम्ब पर ध्यान लगाने से स्वयं अनुभव द्वारा विचार शक्ति उत्पन्न होगी। आदमी शनैः शनैः स्वयं ही सोचने लगेगा कि मैं जैसी सूरत बनाता हूँ वैसी ही दिखायी देती है। प्रतिबिम्ब का आधार मेरी ही आकृति है। इतने ही सोचने से फिर उसका ध्यान प्रतिबिम्ब से हट जाता है और उसमें अपना विचार उत्पन्न होता है जितना वह विचार और चिन्तन और विचार और चिंतन की गहराइ या उसमें लीन होने से काम लेगा उतना ही वह अपने आपे की ओर आकर्षित होगा। यह अद्वैत है। तीन गये दो रहे। दो गया अब एक रहा

इस एक का ख्याल भी धोखे में डालने वाला है क्योंकि जब तक एक की जड़ रहेगी तब तक दो अखुये अवश्य ही उत्पन्न होते रहेंगे इसलियेअब इस विचार का भी त्याग होता जायेगा क्योंकि विचार सदा मिलौनी या मिलने और दो पने के दर्जे में होता है। गुरु की वाणी है—

जहाँ मिलौनी तहाँ विचार। एक एक में कहा विचार ॥

इस वाणी का अर्थ स्पष्ट है। वे कहते हैं "कि विचार की गम्य केवल उस जगह होती है जहाँ मिलौनी और द्वन्दपने की मिली जुली रचना होती हैं। एक में एक का विचार असम्भव है। जहाँ केवल एक है वहाँ कभी विचार नहीं होता।"

:०—:०

तिरपनवां वचन

गुरु भक्ति

जहां गुरु भक्ति होती है वहाँ स्वयं साक्षात्कार का अवसर रहता है। जहाँ गुरु भक्ति का अभाव होता है वहाँ साक्षात्कार नहीं होता हैं। यह सच है कि प्रारम्भ में तुरन्त साक्षात्कार नहीं होता मगर बीज तो मौजूद है। बीज नष्ट नहीं होता। कभी न कभी जब अनुकूल परिस्थिति मिलेगी वह पैदा होकर फल फूल देगी क्योंकि गुरु भक्ति ही वास्तव में असलियत का बीज है। कबीर साहब की वाणी हैं :—

कबीर गुरु की भक्ति कर, तज विषया रस चौज[1]
बार बार नहिं पाइये, मानव जन्म की मौज ॥
कबीर गुरु की भक्ति कर, धृग जीवन संसार।
धूयें का धौराहरा[2], बिनसत लगे न बार ॥

१. स्वाद २. मीनार

भक्ति कैसी होनी चाहिए ? इसका उत्तर इस प्रकार दिया गया है :--

जल ज्यों प्यारी माछलो, लोभी प्यारा दाम ।
माता प्यारी बालिका, भक्ति पियारी राम ॥
भक्ति प्राण सों होत है, मन दे कीजे भाव ।
परमार्थ परतीत में, यह तन जाव तो जाव ।

भक्ति नष्ट होने वाली वस्तु नहीं है । कबीर साहब का कथन है :--

भक्ति बीज विनशे नहीं, आय पड़े जो झूल[1] ।
कंचन जो विष्ठा पड़े, घटे न ताको मूल ॥

यह भक्ति सरल से सरल है और कठिन से कठिन भी है । यह जीते जी मरने का तरीका है। जो जीते जी मरने का भेद जानते है उनके लिये तो यह बड़ी सरल है । यहाँ तक कि इससे सरल कोई भी काम नहीं है और जो जीते जी मरना नहीं चाहते, उनके लिये यह अत्यन्त कठिन मार्ग है । जो व्यक्ति जान पर नहीं खेलता अथवा जो जान जोखम में नहीं पड़ना चाहता उसे भक्ति का नाम भूलकर भी न लेना चाहिए । यों ही भक्ति की हिर्स करने से क्या लाभ !

विद्यार्थी जब अपनी तीव्र इच्छा को विद्या की ओर लगा देता है और लोक परलोक किसी से प्रयोजन नहीं रखता, उस समय उसे विद्या प्राप्त होती है । ज्योतिषी धूप की गर्मी को सहन करता हुआ हाथ में दूरबीन लेकर तारागणों की चाल देखा करता है और अपनी देह का ध्यान तक नहीं रखता, तब जाकर वह ज्योतिषी बनता है । डुबकी लगाने वाला समुद्र की गहराई का भय न करता हुआ जब उसमें कूद पड़ता है तब

१—देह

मोती हाथ में लाता है। "इसी प्रकार हर काम में जीते जी मर मिटना पड़ता है तब सफलता होती है। कोई कार्य्य हो, काई साधन हो, जब तक दत्त चित्त होने और निमग्न होने का रहस्य नहीं मिल जाता तब तक उसे असफलता रहती है।"

अभिप्राय तो यह है कि देह की ओर से विस्मृति हो जाय और इसी विस्मृति का नाम मरण है। जब यह नियम जीवन के दैनिक कार्यों में बरता जाता है तो भक्ति में क्यों न बरता जायेगा। भक्ति चाहती है कि पूर्णतया उसी के हो जाओ। उसके अतिरिक्त किसी और का ध्यान न रहे तब वह हाथ आयेगी। इसके बिना कठिन है।

बात सरल है मगर समझ में नहीं आती। यदि थोड़ा भी समझ में आ जाय तो क्षणमात्र में अभी काम बना हुआ है।

कबीर साहब की वाणी है :--

भक्ति दुहेली गुरु को, नहिं कायर का काम।
शीश उतारे हाथ सों ताहि मिले सत नाम॥
भक्ति दुहेली गुरु की, नहिं कायर का काम।
निराधार निष्प्रयोजन, आठ पहर संग्राम॥
भक्ति दुहेली गुरु की, ज्यों खाँडे की धार।
डिगमिगाय सो गिर पड़े, निश्चल उतरे पार॥
जब लग भक्ति सकाम है, तब लग निष्फल सेव।
कहें कबीर वह क्यों मिलें, निःकामी निज देव॥
विषय त्याग वैराग रत, समता हृदय बसाय।
मित्र शत्रु एकों नहीं, मन में राम सहाय॥

मगर इससे घबराने की आवश्यकता नहीं है। भक्ति स्वयं दुनियाँ में श्रेष्ठतम पारितोषिक और सबसे बड़ा बदला है। इसका रस हर समय रहता है और वह कार्य को सुगम और सुख दायक बना देती है। (शेष अगले अंक में) —×—

R.S

गाफिल शब्दावली से :—

शब्द

प्रेमदास जी क्या बतलाऊं, बात नहीं बतलाने की ।
बुद्धि जिसको पकड़ न सकती, कैसे वह समझाने की ।१।

समझ बूझ का दर्जा नीचे ऊपर हालत अनुभव की ।
अनुभव करे अनुभवी कोई बाकी सर खपाने की ।२।

हर इक का है अनुभव अपना दो अनुभव एक नहीं होते ।
गुरु इशारा देता है, चेले की सुरत जगाने को ।३।

जब तक चेला करे न अनुभव, वह अनुभवी नहीं होता ।
बिन अनुभव की बात है जितनी, सारा पंथ चलाने की ।४।

चन्द्रमा का किया इशारा, कहा गुरु ने देखो वो ।
उस दरखत के पार वह देखो नजर उधर ले जाने को ।५।

जिस चेले को आंख नहीं है, देखेगा कैसे उसको ।
जब तक न देखो अपनी नैनी, तब तक सब झुठलाने की ।६।

गुरु ने तुमको दिया इशारा, अब आँखों से देखो तुम ।
एक दफा गर देख लिया, ताकत फिर किसे बहकाने की ।७।

सन्त कृपा और दया गुरु की, दोनों तुमको मिली हुई ।
तीसरी दया करो अब अपनी 'गाफिल' पास कराने की ।८।

"मनुष्य बनो" (हिन्दी मासिक पत्र) समाचार पत्र (केन्द्रीय) अधिनियम १९५६ नियम ८ फार्म ४ के अनुसार अपेक्षित आवश्यक सूचना

१—प्रकाशन का स्थान	:	अलीगढ़
२—प्रकाशन अवधि	:	मासिक
३—मुद्रक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
क—राष्ट्रीयता	:	भारतीय
ख—पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़।
४—प्रकाशक का नाम		श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता		भारतीय
पता		शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ ।
५—सम्पादक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ ।
६—स्वत्वाधिकारी	:	श्रीमती सुधा मीतल
संरक्षक	:	परमदयाल फकीरचन्द्र जी महाराज

७—मैं सुधा मीतल घोषित करती हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी और विवरण के अनुसार सही है ।

दिनांक १५ नव०, १९८८

सुधा मित्तल

प्रकाशक के हस्ताक्षर

Regd. NO L—ALG.28

मिलने का पता :—	अवैतनिक सहायक सम्पादक
'मनुष्य बनो' कार्यालय	महेशचन्द्र मीतल
शिव भवन, लेखराज नगर	सम्पादक, व्यवस्थापक व प्रकाशक
अलीगढ़—२०२००१ (उ० प्र०)	श्रीमती सुधा मीतल

ग्राहक संख्या— 1769

श्रीमान Sri Satyam Narayan

H. No. 1-8-213/1

Pedner Ghost Road, Secunderabad

मुद्रक : श्रीमती सुधा मीतल, भारतभूषण प्रिन्टर्स, लेखराज नगर, अलीगढ़ ।